International Journal of History 2020; 2(2): 137-141

E-ISSN: 2706-9117
P-ISSN: 2706-9109
IJH 2020; 2(2): 137-141
Received: 17-06-2020
Accepted: 21-07-2020

डॉ॰ नरेश राम
स्नात्तकोत्तर इतिहास विभाग, ल॰ ना॰ मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ॰ नरेश राम
स्नात्तकोत्तर इतिहास विभाग, ल॰ ना॰ मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

पूर्व मध्यकालीन भारत की राजनीतिक स्थिति : एक अवलोकन (750–1100 ई॰)

डॉ॰ नरेश राम

सारांश
पूर्व मध्ययुग का राजतंत्रीय सीमांकन परिवर्तनशील था और जिनको परिभाषित करना कठिन है। राजतंत्रों के केवल नाभिकीय क्षेत्रों और राजनीतिक केंद्रो को चिन्हित किया जा सकता है, इनकी सीमाओं को नहीं। इन शताब्दियों के राजनीतिक आख्यानों से कुछ बड़े तथा अपेक्षाकृत दीर्घकालिक राजतंत्रों की जानकारी मिलती है, जिनमें चोल, राष्ट्रकूट, पालवंश तथा प्रतिहारों का नाम लिया जा सकता है। वैसे अल्पकालिक अस्तित्ववाले राजतंत्रों की संख्या कहीं अधिक थी, जिनका नियंत्रण छोटे–छोटे क्षेत्रों में सिमित था। विभिन्न राजघरानों के बीच का सम्बंध युद्ध और संघर्ष से लेकर सैन्यसंधि या वैवाहिक संधि का रूप ग्रहण कर लेता था। इन राजघरानों ने भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न हिस्सों में किस प्रकार राजनीतिक आधार तथा कृषि संसाधनों को विकसित किया, इसकी स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती है। दरअसल, राजनीतिक संरचनाओं के केंद्र में स्वशाखीय वंशजों का अस्तित्व था।
राजनीतिक कुलीन वर्ग की स्थानिक गतिशीलता और उच्चस्तरीय सामरिक शक्ति का निर्माण, राजकीय समाज के विस्तार के साथ–साथ विकसित होते चली गई। इस युग में होने वाले अहर्निश युद्धों से यह स्पष्ट होता है कि दमनात्मक शक्ति और समकालीन राजनीति से सामरिक शक्ति के महत्त्व का पता चलता है। केंद्रीय सैन्य संगठनों के साथ–साथ सम्राटों के झगड़े सैनिकों पर भी आश्रित थे। उदाहरण के लिए, विहार और बंगाल से प्राप्त होने वाले पाल शासकों द्वारा निर्गत अभिलेखों में गौड़, मालव, खास, कुलिक, हूण, कर्णाट तथा लाट के बहाल किए गए सैनिकों का भी उल्लेख है। राजतरंगिणी में भी कश्मीर के शासकों के द्वारा अन्य क्षेत्रों से बहाल किए गए भाड़े के सैनिकों का भी वर्णन मिलता है। स्थायी तथा भाड़े पर बहाल किए गए सैनिकों के अलावा समय की मांग के अनुसार, सहयोगी और अधीनस्थ शासकों से भी सैन्य सहायता ली जाती थी।

मुख्य शब्दः मध्यकालीन, राजनीति, भारतीय, युद्ध, संघर्ष, शक्ति

प्रस्तावना
राजकीय अभिलेखों की प्रशास्तियों से प्रचलित राजनीतिक पदानुक्रमों का अनुमान लगाया जा सकता है। अधीनस्थ शासकों के द्वारा निर्गत अभिलेखों में अक्सर उनके अधिपति शासकों का उल्लेख होता है और ठीक उसी प्रकार कई बार अधिपतिशासकों के द्वारा अभिलेखों में अपने अधीनस्थ शासकों का जिक्र किया गया है। यद्यपि, सामंतवादी प्राक्कल्पना को संपूर्ण रूप से विश्लेषित करने पर अनेक विवाद सामने आते हैं, फिर भी अधीनस्थ सामंतों को मोटे तौर पर वैसे अधीनस्थ शासकों के रूप में देख सकते हैं। जिन्हें अपने अधिपति के प्रति निष्ठापूर्ण समर्पण और आवश्यकता पड़ने पर सैन्य सहायता देनी पड़ती थी, किंतु आधिपत्य की इस शृंखला का भूमि अनुदानों से को भी सीधा सरोकार दिखलाई नहीं देता। सैनिक सहायता की एवज में पूर्व मध्यकालीन शासकों के द्वारा भूमि अनुदान निर्गत करने के कुछ प्रमाण अवश्य हैं, लेकिन निश्चित रूप से यह कोई प्रचलित प्रवृति नहीं कहीं जा सकती।
इस काल में जिस नवीन राजनीतिक कुलीन वर्ग का अभ्युदय हुआ था, उसका भूमिपति समूहों के साथ जबरदस्त सरोकार था। इनमें से एक बड़े भूमि पति वर्ग ने राजकीय भूमि अनुदानों से जन्म लिया था और उन्हीं के द्वारा वह पोषित भी हो रहा था।
यद्यपि, पूर्व मध्ययुगीन समाज की प्रकृति पितृसत्तात्मक थी, लेकिन इस काल का भारतीय इतिहास ऐसे अनेक उदाहरणों से भरा है, जिसमें रानियों को राजगद्दी का उत्तराधिकार सौंपा गया है दिद्दा, यशोवती और सुगंधा कश्मीर की तीन प्रसिद्ध रानियां हुई। चन्द्रादित्य की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी विजयामहादेवी को पूर्वी चालुक्यों के शासन की बागडोर दी गई।

पूर्व मध्यकालीन इतिहास की पुनर्रचना के समक्ष एक बड़ी समस्या यह है कि विभिन्न राजवंशों ने अपनी–अपनी राजनीतिक सफलता का अतिशयोक्तिपूर्ण दावा किया है और कई बार उनके प्रतिस्पर्द्धी राजवंशों ने इन दावों का पूर्ण रूप से खंडन भी किया है। फिर एक आधरभूत आख्यान की पुनर्रचना की जा सकती है (प्रस्तुत वर्णन करना अपेक्षित नहीं है, किंतु प्रस्तुत विमर्श के द्वारा हम एक संक्षिप्त रूपरेखा तैयार कर सकते हैं, जिसमें 600–1100 सा. सं. के बीच के कुछ महत्त्वपूर्ण राजवंशों पर केंद्रित किया जा सकेगा।

पूर्व–मध्यकालीन भारतः राजनीतिक स्थिति

छठी शताब्दी के अंतिम चरण में गुप्त साम्राज्य के पतन के साथ भारतीय इतिहास के एक महान युग का अंत हो गया। गुप्त साम्राज्य के पतन के बड़े दूरगामी राजनीतिक परिणाम हुए। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि पिछले एक हजार से अधिक वर्षों तक मगध भारत का राजनीतिक गुरुत्वाकर्षण बिंदु रहा था, परन्तु गुप्त साम्राज्य के पतन के साथ ही मगध का वह महत्व हमेशा के लिए समाप्त हो गया और अब उत्तर भारत की राजनीतिक शक्ति का केंद्र–बिंदु कन्नौज हो गया। सातवीं शताब्दी के प्रारंभ में कन्नौज के राजसिंहासन पर हर्ष के राज्यारोहण के साथ कन्नौज के उत्कर्ष की इस सीमा तक अभिवृद्धि हुई कि संपूर्ण अगली शताब्दी में भारत की तीन शक्तियों ने इस पर आधिपत्य स्थापना के लिए लगभग एक शताब्दी तक आपस में संघर्ष किया।

त्रिपक्षीय संघर्ष

आठवीं शताब्दी के प्रारंभ में कन्नौज पर नितांत शक्तिहीन आयुध शासकां का शासन था। वे अपनी समकालीन पूर्वोक्त तीन महाशक्यिों की तुलना में इतने शक्तिहीन और अक्षम थे कि उनके सामने हर विजेता के सम्मुख नतमस्तक होने के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं था। इसके विपरीत पाल, प्रतीहार और राष्ट्रकूट उनकी शक्तिहीनता का लाभ उठाकर कन्नौज पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहते थे। कन्नौज पर आधिपत्य के लिए इन तीनों महाशक्तियों के मध्य संघर्ष को 'त्रिपक्षीय संघर्ष' कहा जाता है। यह संघर्ष बड़ी विचित्र एवं रोचक स्थितियों में लगभग एक शताब्दी तक चलता रहा और अंततः 9वीं शताब्दी के प्रारंभ में गुर्जर–प्रतीहार कन्नौज पर आधिपत्य स्थापित करने में सफल हुए।

इस त्रिपक्षीय संघर्ष का कारण कन्नौज नगर पर अधिकार करने की आकांक्षा मात्र नहीं था। कन्नौज वास्तव में इन तीनों महाशक्तियों की महत्वाकांक्षाओं का क्रीड़ा–स्थल था। जैसा कि हम पहले कह आए हैं, गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद कन्नौज का वहीं स्थान हो गया था जो मगध साम्राज्य के इतिहास में कभी पाटलिपुत्र का था। कन्नौज अब उत्तर भारत की राजनीतिक धुरी का प्रतीक था। अतः समकालीन राजनीतिक महाशक्यिों द्वारा कन्नौज पर प्रभुत्व स्थापित करने की लालसा बड़ी स्वाभाविक थी। इस काल में कन्नौज के आसपास के उत्तर भारत के क्षेत्र को मध्यदेश कहा जाता था।

कन्नौज के गुर्जर–प्रतीहार

हरिश्चंद्र और उसके उत्तराधिकारी तथा इस वंश के अन्य शासकों ने जोधपुर, नंदीपुर, भड़ौच, उज्जयिनी आदि में अनेक छोटे–छोटे राज्य स्थापित किए थे। हरिश्चंद्र की संतानों में उज्जयिनी के शासक नागभट्ट प्रथम (730–756 ई॰) ने प्रतीहार राज्य का विस्तार किया था। ग्वालियर अभिलेख के अनुसार नागभट्ट, अरबों को सिंध से आगे बढ़ने से रोकने में सफल रहा था, किंतु राष्ट्रकूट दंतिदुर्ग से इसे पराजय का सामना करना पड़ा। नागभट्ट के उत्तराधिकारी कक्कुक तथा देशराज के बाद वत्सराज (लगभग 778–805 ई॰) महात्वाकांक्षी शासक हुआ। उसने राजस्थान का मध्य भाग और उत्तर भारत का पूर्वी भाग जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। कन्नौज पर अधिकार करने के प्रयास में उसने पाल वंश के धर्मपाल को हराया, किंतु वह राष्ट्रकूट ध्रुव से हार गया। इसी के लड़के नागभट्ट द्वितीय (805–533 ई॰) ने प्रतीहार वंश की शक्ति तथा प्रतिष्ठा को बढ़ाया था। इसके पौत्र भोज के ग्वालियर अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि इसमें आंध्र, सैंधव, विदर्भ तथा कलिंग के शासकों को पराजित किया था और आनर्त (उत्तरी गुजरात), मालवा, किरात, तुरुक्ष (तुर्क), वत्स तथा मत्स्य के राजाओं के पर्वतीय दुर्गों पर विजय प्राप्त की थी। इसी समय कन्नौज पर आधिपत्य के लिए त्रिपक्षीय संघर्ष चल रहा था। नागभट्ट ने चक्रायुद्ध को हराकर कन्नौज पर अधिकार कर लिया। इसी कारण से उसका पालवंश के धर्मपाल से युद्ध हुआ। जोधपुर के प्रतीहार, दक्षिणी काठियावाड़ के चालुक्य तथा मेवाड़ के गुहिल शासकों की सहायता से उसमें धर्मपाल को पराजित किया और उसे मुँगेर तक खदेड़ दिया। संभवतः चक्रायुध तथा धर्मपाल के आमंत्रण पर राष्ट्रकूट गोविंद तृतीय ने उत्तरी भारत का विजय अभियान शुरू किया और 809 या 910 ई॰ के आसपास नागभट्ट को पराजित किया। गोविंद तृतीय के दक्षिण लौट जाने पर धीरे–धीरे पाल वंश के धर्मपाल तथा वेदपाल ने उत्तर भारत में अपनी स्थिति मजबूत कर ली जब कि मालवा और गुजरात नागभट्ट के हाथ से निकल गए थे। फिर भी ग्वालियर, कलिंजर और कन्नौज पर अपना अधिकार बनाए रखने में वह सफल रहा।

गहड़वाल वंश

प्रतीहारों के बाद कन्नौज के वैभव तथा उसकी समृद्धि को गहड़वालों ने नया जीवन प्रदान किया। 1080–85 ई॰ के बीच चंद्रदेव ने राष्ट्रकूट शासक गोपाल को हराकर कन्नौज और लगभग संपूर्ण (आधुनिक) उत्तर प्रदेश पर अपना आधिपत्य स्थापित करके 1100 ई॰ तक शासन किया। उसके उत्तराधिकारी मदन चंद्र या मदन पाल के संबंध में विस्तृत जानकारी आज उपलब्ध नहीं है। मदन चंद्र का पुत्र और उत्तराधिकारी गोविंद चंद्र (114–1154 ई॰) महत्वाकांक्षी तथा योग्य शासक था। उसने बंगाल के पालों के मगध को जीता था और मलवा पर भी अधिकार कर लिया। उसने उड़ीसा और कलिंग के शासकों से भी शक्ति–परीक्षण किया था तथा काश्मीर के शासक जयसिंह, गुजरात के जयसिंह सिद्धराज तथा दक्षिण के चोल शासकों से मित्रतापूर्ण संबंध स्थापित किए। इसने लाहौर के तुर्की हाकिम को हराकर आगे बढ़ने से रोका। युद्ध और कूटनीति दोनों में समर्थ गोविंद चंद्र ने एक बड़े साम्राज्य का निर्माण किया।

दिल्ली तथा अजमेर के चौहान

चौहान वंश की अनेक शाखाओं में से सातवीं शताब्दी में वासुदेव द्वारा स्थापित शांकभरी (अजमेर के निकट) के चौहान राज्य का इतिहास में विशेष महत्व है। वासुदेव के बाद सामंत पूर्णतल्ल जयराज, विग्रहराज प्रथम, चंद्रराज, गोपराज आदि यहाँ अनेक शासक हुए। आठवीं शताब्दी के अंतिम तीन दशकों में दुर्लभराज प्रथम प्रतीहारों का सामंत था। उसके उत्तराधिकारी गोविंदराज प्रथम ने नागभट्ट द्वितीय के काल में विशेष महत्व प्राप्त किया। उसके बाद चंद्रराज द्वितीय गुवक (गोविंदराज) द्वितीय चंदन के कुछ समय तक शासन किया। दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में वाक्पतिराज प्रथम ने प्रतीहारों से अपने को स्वतंत्र कर लिया। उसके लड़के सिद्धराज ने अपने राज्य का विस्तार करके महाराजाधिराज का विरोध धारण किया। तत्पश्चात् इस वंश में विग्रहराज द्वितीय दुर्लभराज द्वितीय, गोविंदराज तृतीय, विग्रहराज तृतीय, पृथ्वीराज प्रथम अजयराज आदि शासक हुए।

बंगाल के पाल तथा सेन वंश

हर्ष के समकालीन शशांक के बाद पाल वंश के नेतृत्व में बंगाल की शक्ति संगठित हुई और देखते–देखते इसकी गणना उत्तरी

भारत की प्रमुख शक्तियों में होने लगी। पाल वंश की स्थापना बौद्ध धर्म के अनुयायी गोपाल (750–770 ई॰ लगभग) ने की थी। बंगाल के सामतों ने बंगाल की राजनीतिक कलह तथा उथल पुथल को समाप्त करने के लिए गोपाल की योग्यता से प्रभावित होकर उसे अपना शासक चुना था। इन सामंतों ने राज्य के हित के लिए अपने व्यक्तिगत स्वार्थ का बलिदान किया। तिब्बती इतिहासकार लामातारानाथ के अनुसार गोपाल पुंडूवर्धन (बोगरा जिला) के एक क्षत्रिय परिवार में उत्पन्न हुआ था। उसने युद्ध द्वारा राज्य का विस्तार किया तथा राज्य को दृढ़ संगठन भी प्रदान किया।

सेन–वंश

पाल–वंश के बाद साम्राज्य–निर्माण द्वारा बंगाल को राजनीतिक नेतृत्व सेन–वंश ने प्रदान किया। एक सेन अभिलेख के अनुसार वे कर्नाट–क्षत्रिय या ब्रह्म–क्षत्रिय थे। सामंत सेन ने रूढ़ में एक राज्य स्थापित किया। उसके लड़के हेमन्त सेन ने रूढ़ में अपनी स्थिति मजबूत की और बंगाल पर कलचुरी कर्ण के आक्रमण के समय यह स्वतंत्र हो गया।

शाही–वंश

काबुल घाटी तथा गंधार प्रदेश में काफी अर्सें से एक तुर्की शाही वंश का शासन स्थापित था। इस वंश के शासक लगर्तूमान को इसके ही एक ब्रह्मण जाति के मंत्री कल्लर ने गछ्दी से हटा दिया और वह स्वयं शासक बन बैठा। इस प्रकार 9वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हिंदू शाही–वंश की स्थापना हुई। इतिहासकारों को यह तथ्य अभी हाल ही में ज्ञात हुआ कि ''राजतरंगिणी में लल्लिय शाही के रूप में कल्लर का ही उल्लेख हुआ है। लल्लिय का राज्य तुरूक्षों के क्षेत्रा (काबुल घाटी) से दरदों के क्षेत्रो (कश्मीर में किशन गंगा घाटी) तक विस्तृत था। लल्लिय पर काश्मीर के शासक शंकरवर्मण ने आक्रमण किया था, किंतु उसे विशेष सफलता नहीं मिली थी। कल्हण ने वीरता तथा वैभव के वर्णन के साथ ही एक उदार आश्रयदाता के रूप में राजा की बड़ी प्रशंसा की है। किंतु काबुल पर लल्लिय का आधिपत्य अधिक समय तक नहीं रह सका। सन् 870 में शफ़ारिद याकूब इब्न लाइथ का इस पर कब्जा हो गया। इसकी मृत्यु के बाद इसी वंश की अन्य शाखा के सामंत ने राज्य पर कब्जा कर लिया। किंतु शीघ्र ही काश्मीर के शासक गोपाल वर्मन ने सामंत को हटाकर लल्लिय के लड़के तोरमाण को गद्दी पर बैठाया और उसका नाम कमलुक रखा। जाबुलिस्तान के हाकिम फ़र्दरान ने एक हिंदू तीर्थ रूकाबन्द (जलालाबाद के निकट) को लूटा जो कमलुक के राज्य में पड़ता था। इससे कमलुक तथा मुस्लिम शासकों में वैमनस्य पनपने लगा था।

काश्मीर के राजवंश

आठवीं शताब्दी के मध्य काल में ललितादित्य मुक्तापीड़ का शासन था। उसके नाम से यह संकेत मिलता है कि वह कार्कोट वंश के जनजातीय परिवेश में उत्पन्न हुआ था। ललितादित्य के समय काश्मीर की पर्याप्त राजनीतिक तथा सांस्कृतिक प्रगति हुई। उसने एक ओर तो कन्नौज के यशोवर्मन को हराया और दूसरी और काबुल तक विजय प्राप्त करते हुए अपनी राजनीतिक स्थिति को मजबूत किया। उसने बुद्धिमानी के साथ विदेशों से राजनीतिक संबंध स्थापित किए और चीन राज्य में अपना राजदूत भी भेजा। धर्मिक दृष्टि से पर्याप्त उदार होने के कारण उसने बौद्ध विहार तथा हिंदू–मंदिर निर्मित कराए, जिनमें उसके द्वारा निर्मित मार्तंड (सूर्य) मंदिर बहुत प्रसिद्ध हुआ। ललितादित्य के दो लड़के थे कुवलयापीड तथा वज्रादित्य बप्पियक जिन्होंने क्रमशः अल्पकाल तक शासन किया। संभवतः सिंध के अरब हाकिम हिशाम इब्न अम्र अततारालेबि ने वज्रादित्य के काल में काश्मीर पर आक्रमण किया था और वह यहां से अनेक बंदी तथा दास पकड़कर ले गया था। उसके बाद जयापीड विनयादित्य (लगभग 770–810 ई॰ तक) नामक महत्वपूर्ण शासक हुआ। उसने बंगाल, कन्नौज, मध्यप्रदेश तथा संभवतः नेपाल पर लगातार सैनिक अभियान करके अपनी शकित का बड़ा विस्तार किया। यह राजा विद्वानों का बड़ा आदर करता था, तभी तो उसकी सभा को क्षीर, भट्ट, उद्भट्ट, दामोदर गुप्त आदि विद्वान लेखक सुशोभित करते थे। उसने अपने राज्यकाल में साहित्य तथा कला को यथेष्ट प्रोत्साहन दिया। वह प्रसिद्ध निर्माता भी था। दुर्भाग्य की बात यह है कि उसके बाद उसके वंश में निर्बल शासक हुए और वंश का ह्रास प्रारंभ हो गया।

उत्पल वंश

काश्मीर में 9वी शताब्दी में उत्पन्न वंश प्रभुत्व में आ गया। इस वंश के स्थापना अवंतिवर्मन ने की थी। राजा अवंतिवर्मन ने लोक–कल्याण के कार्यों में अपना जीवन अर्पित कर दिया। उसने कृषि के विकास के लिए नहरों का निर्माण कराया तथा अनेक नगरों की स्थापना का श्रेय भी प्राप्त किया। राजा के मन में ललित कलाओं के प्रति बड़ा आदर भाव था। इस भावना से उसने साहित्य तथा कला को भी काफी प्रोत्साहन दिया।

सिंध के शासक

सिंध में सातवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में शूद्र जाति के एक बौद्ध ने अपना शासन स्थापित किया था। किंतु राय शाहसी द्वितीय के काल में उसके ही ब्राह्मण मंत्री चच ने राज्य पर अधिकार कर लिया और वह स्वयं शासक बन बैठा। यह मंत्री चालीस वर्षों तक शासन करता रहा। चच के लड़के दाहिर के समय में ईराक के हाकिम अलहज्जाज ने मुहम्मद बिन कासिम के नेतृत्व में अरबों को सिंधपर आक्रमण के लिए भेजा। भारी संघर्ष के बाद अरबों ने 712 ई॰ में सिंध पर विजय प्राप्त कर ली। यह सच है कि अरबों की सिंध–विजय का शेष भारत पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा, किंतु उनका युद्धों ने अरबों को भारत में राज्य विस्तार करने में पर्याप्त अवरोध उत्पन्न किया। ऐसी स्थिति में महमूद गजनवी के आक्रमण के समय से यहां का इतिहास अधिक स्पष्ट हो जाता है।

गुजरात के चालुक्य

चालुक्य वंश की अनेक शाखाओं में से हमारे सर्वेक्षण काल के अंतर्गत गुजरात के चालुक्य वंश का उत्कर्ष विशेष महत्वपूर्ण है। इस वंश के मूलराज प्रथम (942–995 ई॰) ने गुजरात के बड़े भाग को जीतकर अन्हिलवाड़ को अपनी राजधानी बनाया। उसने प्रतीहारों से सौराष्ट्र तथा लक्ष (लारवा) से कच्छ प्रदेश जीत लिया था, किंतु यह कल्याणी के चालुक्य तैल द्वितीय परमार मुंज तथा त्रिपुरी के कलचुरी शासकों तथा चौहान विग्रहराज द्वितीय से पराजित हुआ था। फिर भी उसका राज्य उत्तर में सांचोर (जोधपुर) तथा पूर्व तथा दक्षिण की ओर साबरमती नदी तक विस्तृत था। वृद्धावस्था में उसने अपने लड़के चामुण्डराज को शासक बनाकर स्वयं सिंहासन का परित्याग कर दिया।

जेजाकभुक्ति के चंदेल

प्रारंभिक चंदेल शासक नन्नुक, वाक्पति, जयशक्ति (जिसके नाम पर बुंदेलखण्ड का नाम जेजाकभुक्ति पड़ा) विजयशक्ति, राहिल और हर्ष कन्नौज के प्रतीहार सम्राटों के सामंत थे। इस वंश के अधिकांश अभिलेख बांदा जिले (उत्तर प्रदेश) के काजिंजर तथा मध्यप्रदेश में स्थित खजुराहों, महोबा तथा अजयगढ़ में मिले है।
हर्ष (लगभग 900–925 ई॰ के उत्तराधिकारी यशोवर्मन (925–950 ई॰) के समय चंदेल राज्य न पर्याप्त शक्ति अर्जित कर ली थी। उसने (संभवतः राष्ट्रकूटों से) कालिंजर विजय करके अपने राज्य की सीमा यमुना तथा गंगा तक बढ़ा ली। दक्षिण में यशोवर्मन ने त्रिपुरी के कलचुरी युवराज प्रथम तथा परमार सियक द्वितीय को

हराकर अपने को चेदि तथा मालवा तक विस्तृत कर लिया। उसने दक्षिण कोसल के सोमवंशी शासकों को भी हराया और गौड़ (बंगाल) तथा मिथिला पर भी विजय प्राप्त की थी। खुजराहो अभिलेख के अनुसार उसने खश (काश्मीर में लोहर राज्य) तथा काश्मीरी योद्धाओं से भी टक्कर ली थी। अभिलेख में उसे कुरू प्रदश (जो प्रतिहारों के अधीन था) के लिए झंझावात और गुर्जरों के लिए अगिन के समान कहा गया है। किंतु इस राजा की इतनी अधिक प्रशंसा ठीक नहीं है क्योंकि इस राजा ने नाममात्र के लिए ही सही प्रतीहार शासक देवपाल की अधीनता स्वीकार की थी। यशोवर्मन को विष्णु की एक मूर्ति प्राप्त हुई थी जिसकी स्थापना के लिए उसने एक भव्य मंदिर का निर्माण कराया था जिसे खुजराहों का वर्तमान चतुर्भुज मंदिर माना जाता है। ऐसी स्थिति में खुजराहो अभिलेख में दिए गए विजय श्रेय में प्रशंसातिरेक के बावजूद चंदेल की शक्ति की अभिवृद्धि को आभास अवश्य होता है।

घंगदेव (950–1007 ई.)

घंगदेव अपने वंश का बहुत प्रसिद्ध शासक था। कालांतर में वह कन्नौज के प्रतीहारों की अधीनता से भी मुक्त हो गया था। 'महाराजाधिराज' विरूद्ध से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है। घंग अपने पिता यशोवर्मन की ही भांति महत्वाकांक्षी, पराक्रमी तथा वीर योद्धा था।

मऊ अभिलेख से ज्ञात होता है कि गंडदेव के पिता (घंग) ने कन्नौज के प्रतीहार नेरश को पराजित किया था। नन्योर अभिलेख के अनुसार उसने वाराणसी में ग्राम दान किए थे जो पहले प्रतीहार राज्य में थे। किंतु घंग के प्रसिद्ध खुजराहो अभिलेख में कथ (बरार के निकट) सिंघल (लंका) तथा कांची के नरेश को उसके द्वारा पराजित करने का वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत होता है। यह सच है कि कोशल के सोमवंशी नरेशों को उसने पराजित किया। आंध्र के चालूक्यों के साथ भी उसका भयंकर युद्ध हुआ। उसने राढ़ (पश्चिमी बंगाल) तथा अंग (भागलपुर जिला) पर सफल आक्रमण किए। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि पहले ये क्षेत्र बंगाल के पालों के अधीन थे।

गंडदेव (1002–1019 ई.)

शाही वंश के आनंदपाल की सहायता के लिए महमूद गजनवी के विरूद्ध कालिंजर के शासक ने 1008 ई. में सेना भेजी थी। यह घंग के उत्तराधिकारी गंडदेव का काल है। उसने अपने लड़के विद्याधर को महमद के आक्रमण के समय (1019 ई.) प्रतीहार शासक राज्यपाल को (कायरता से भाग जाने के कारण) दंडित करने भेजा था। राज्यपाल की हत्या करने के बाद विद्याधर ने उसके लड़के त्रिलोचनपाल को कन्नौज का शासक बना दिया।

चंदेल शासकों के इस कार्य के कारण 1019 ई. तथा पुनः 1022 ई. में महमूद ने चंदेलों पर आक्रमण किया। निजामुद्दीन गर्दजी तथ फरिश्ता के अनुसार विद्याधर ने महमूद से युद्ध नहीं किया था किंतु ताजुल, मआसिर से ज्ञात होता है कि एक दिन युद्ध करने पर विद्याधर ने उससे शांति–समझौता कर लिया और दोनों ने एक–दूसरे को उपहार दिए। चंदेल शासक ने महमूद को तीन सौ हाथी भी दिए थे। विद्याधर के बाद विजयपाल (1030–1050 ई.), देववर्मन (1050–1100 ई.) सल्लक्षणवर्मन (1100–1150 ई., जयवर्मन तथा पृथ्वीवर्मन आदि इस वंश के शासक हुए थे। किंतु भारतीय इतिहास में इनकी कोई विशेष उल्लेखनीय उपलब्धि नहीं है।

मलवा के परमार

परमार वंश के प्रारंभिक शासक उपेंद्र, वैरिसिंह प्रथम, सियक प्रथम, वाक्पति प्रथम तथा वैरिसिंह द्वितीय के संबंध में विशेष जानकारी आज उपलब्ध नहीं है। ऐतिहासिक तथ्यों पर गहराई से ध्यान केंद्रित करते ही ज्ञात होता है कि ये संभवतः राष्ट्रकूटो की अधीनता स्वीकार करते थे।

सियक द्वितीय ने सौराष्ट्र के चालुक्यों तथा मालवा के उत्तर –पश्चिम में स्थित हूणों को भी पराजित किया था। नवसाहसांकचरित के अनुसार उसने हूण स्त्रियों को विधवा कर दिया था। साथ ही उसे चंदेल यशोवर्मन के आक्रमण का सामना करना पड़ा। 968 ई. में राष्ट्रकूट खोटिख को हराकर मान्यखेत को उसने जमकर लूटा। संक्षेप में कहा जा सकता है कि परमार राज्य की स्वतंत्राता बनाए रखने में यह सफल रहा।

मुंज (973–995 ई.)

प्रसिद्ध रचना प्रबंधचिंतामणि के अनुसार मुंज सियक का दत्तक पुत्र था। मुंज एक साहसी योद्धा, पराक्रमी विजेता तथा कुशल प्रशासक था।

कौथेम दानपत्र से ज्ञात होता है कि मुंज ने हूणों को हराया था। इतना ही नहीं उसने मेवाड़ के गुहिल वंश के शासक शक्तिकुमार को हराकर उसके कुछ प्रदेश परमार राज्य में सम्मिलित कर लिए थे (997 ई. का हस्तिकुंड अभिलेख)। उदयपुर अभिलेख के अनुसार मुंज ने कलचुरी वंश के युवराज द्वितीय को हराकर उसकी राजधानी त्रिपुरी पर भी अधिकार किया था। उत्पल राज (मुंज) ने (कौथेम अभिलेख) नाडोल के चौहान बलिराज पर आक्रमण किया तथा उसने आबू पर्वत के क्षेत्र पर अधिकार स्थापित कर लिया था। इस सफलता के साथ ही उसने लाट प्रदेश पर भी विजय प्राप्त की थी।

कल्याणी के चालुक्य नरेश तैल द्वितीय को मुंज ने छह बार पराजित किया, किंतु सातवीं बार युद्ध में बंदी बना लिया गया और उसे अपमानित करके उसकी हत्या कर दी गई। इस घटना का विस्तृत उल्लेख अभिलेखों और अबुल फजल के आइन–ए–अकबरी में भी मिलता है। मुंज अत्यंत पराक्रमी, कुशल प्रशासक तथा विद्याप्रेमी शासक था। उसके काल में परमार राज्य की सभी क्षेत्रों में उन्नति हुई थी ओर उसका काल परमारों के लिए गौरवशाली युग था। वह कवियों तथा विद्वानों का आश्रयदाता था। उसकी राजसभा में नवसाहसांकचरित का लेखक पद्मगुप्त, दशरूपक का लेखक धनंजय, यशोरूपावलोक के रचयिता धनिक जैसे कवि–कलाकार मौजूद थे। वह स्थापत्य–कला का प्रेमी तथा निर्माता भी थे।

कलचूरी

कलचुरियों का एक वंश सरयूपार (गोरखपुर) में भी थी किंतु वेद (जिसका प्राचीन नाम डाहलमंडल भी थी) या त्रिपुरी (जबलपुर) से लगभग दस किलोमीटर पश्चिम के कलचुरी वंश ने इस काल के इतिहास को विशेष रूप से प्रभावित किया।

ओमोघवर्ष के संजन ताम्रपत्रा से ज्ञात होता है कि राष्ट्रकूट गोविंद तृतीय ने डाहल–प्रदेश को जीतकर लक्ष्मणराज को यहां का प्रांतीय शासक बनाया था। कोकल्ल प्रथम ने यहां (लगभग 845 ई. में) कलचुरी वंश का राज्य स्थापित किया। उसकी गणना अपने समय के महानतम सेनानायकों में होती है। उन्होंने प्रतीहार शासक भोज प्रथम सरयूपार के कलचुरी शंकरगण, मेवाड़ के गुहिल वंश के हप्पराज, शांकभरी के चौहान गूवक द्वितीय (ये सभी भोज प्रतीहार के ही सामंत थे) को पराजित करके उनके कोष का अपहरण कर लिया। उन्होंने तुर्कों (सिंध के अरबो की सेना) को भी पराजित किया था। इन्होंने बंग (पूर्वी बंगाल) तक सैनिक अभियान करके वहां पर धन की लूट की थी। राष्ट्रकूट कृष्ण द्वितीय को भी उन्होंने हराया और कोकण के शासक पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। उन्होंने अपनी वीरता से राज्य का विस्तार तो किया ही, साथ ही अपनी सैनिक श्रेष्ठता से कलचुरी राज्य की महत्ता–विशेषकर उत्तरी भारत की राजनीति में स्थापित कर दीं दूरदर्षिता के कारण उन्होंने चंदेल तथा राष्ट्रकूट वंशों में वैवाहिक संबंध भी स्थापित किए।

दक्षिण भारत : ग्यारहवीं एवं बारहवीं शताब्दी के मध्य (चोल–चालुक्य युग)

दसवीं शताब्दी का अंतिम चरण दक्षिण भारत के इतिहास में राजनीतिक दृष्टि से संक्रमण काल था। पहले से सत्तारूढ़ शक्तियों का पतन हो रहा था और उनका स्थान नवीन उदीयमान शक्तियां ले रही थी। उत्तर में अंतिम राष्ट्रकूट नरेश दक्कन द्वितीय को पुराने चालुक्य वंश से संबंधित तैलप द्वितीय ने अपदस्थ करके 973 ई॰ में कल्याणी के चालुक्य वंश की स्थापना की। तैलप द्वितीय द्वारा स्थापित चालुक्य साम्राज्य की समीाएं उत्तर में कृष्णा से लेकर दक्षिण में वेंगी के चालुक्य सम्राज्य तक फैली हुई थी। आधुनिक आंध्र में स्थित वेंगी के पूर्वी चालुक्यों का राज्य भंयकर अव्यवस्था से ग्रस्थ था। 973 से 999 ई॰ तक आंतरिक कलह और अराजकता के कारण वेंगी का राजसिंहासन लगभग रिक्त रहा। अंततः राजराज के हस्तक्षेप से यह अव्यवस्था समाप्त हुई। सुदूर दक्षिण में पल्लवों का 9वीं शताब्दी में बड़ी तीव्र गति से पतन हुआ और 9वीं शताब्दी के अंत तक उनकी नाममात्र की शक्ति शेष रह गई। पल्लवों का स्थान शीघ ही चोलों ने ले लिया। इसी प्रकार पांड्य भी, जो उत्तर में वेललारू नदी से दक्षिण में कन्याकुमारी तक फैला हुआ था, चोलों के साम्राज्यवादी प्रवाह में आत्मसात हो गया और चोलों के पतन तक पांड्य केवल इतिहास में अपने अस्तित्व की रक्षा मात्र कर पाए। पश्चिमी समुद्र तट पर चेरों की शकित भी इस काल में बहुत कमजोर हो गई थी। चेर (केरल) और चोलमंडलम के मध्य में स्थित कर्नाटक के गांगों की शक्ति पतनोन्मुख थी। चोलों ने पल्लव प्रदेशों को विजित करके 1000 ई॰ में कर्नाटक के गांग प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार दसवीं शताब्दी के अंत में दक्षिण भारत में दो महाशक्तियों का उदय हुआ – (1) कल्याणी के चालुक्य (2) तंजवुर के चोल।

निष्कर्ष

इस काल के प्रमुख राजवंशों की उत्पत्ति से संबंधित अनेक ऐतिहासिक साक्ष्यों को प्रस्तुत किया जा सकता हैं, किंतु यहां पर आधुनिक इतिहासकारों द्वारा प्रतिपादित मतों का विवेचन ही समीचीन लगता है। ऐसा करने का प्रधान कारण तो यही है कि प्रमुख विदेशी इतिहाकारों द्वारा राजपूतों के विदेशी जातियों से उत्पन्न होने के मतों का परीक्षण हम ऊपर कर चुके हैं। दशरथ शर्मा, विश्वंभर शरण पाठक आदि अनेक विद्वानों ने कई राजपुत वंशों की उत्पत्ति ब्राह्मण जाति से मानी है। अभिलेखों के अनुसार भंडोर के प्रतीहार ब्राह्मण हरिश्चंद की क्षत्रिय वंशज पत्नी भद्रा के वंशज थे। परमार आबु पर्वत के वशिष्ठ गोत्रीय ब्राह्मण तथा चौहान (चाहमान) वत्स गोत्र के ब्राह्मण प्रतीत होते हैं। चंदेलों की उत्पत्ति से संबंधित मिथक में उन्हें काशी के राजा पुरोहित चंद्रात्रेय की लड़की से उत्पन्न बताया गया है। अनेक विद्वान ऐसा मानते रहे है कि गुहिल जिसके संस्थापक बप्पा रावल नागर ब्राह्मण थे, प्रसिद्ध वंश में महाराणा प्रताप का जन्म हुआ था। परवर्ती विद्वानों ने मेवाड़ के इस प्रसिद्ध वंश को भी भगवान रामचंद्र के वंश से संबंधित करके उन्हें सूर्यवंशी क्षत्रियों से संबंधित करने का जोरदार प्रयत्न किया है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि राजपूतों की उत्पत्ती का प्रश्न एक व्यापक ऐतिहासिक संदर्भ प्रस्तुत करता है। राजपूत वंशों की उत्पत्त विदेशी ब्राह्मणों, जन–जातियों या वैदिक क्षत्रियों से होना सर्वथा स्वाभाविक है। इस सामाजिक प्रक्रिया को कर्म के अनुरूप जात्युपकर्ष तथा जात्यपकर्ष का सैद्धांतिक आधार प्राप्त था। साथ ही इस प्रक्रिया में व्यापक आर्थिक तथा सामाजिक परिवर्तनों से उद्भूत मध्ययुगीन चेतना की ऐतिहासिक अनिवार्यता ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

संदर्भ

1. मोहम्मद अजीज : स्टडीज इन इस्लामिक कल्चर इन द इंडियन इनवारेनमेंट
2. अहमद, एम.बी. : द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ जस्टीस इन मेडाइमल इंडिया
3. अल बिरूनी : किताबुल हिंद
4. अलटेकर, ए. एसः द राष्ट्रकुलास एण्ड देयर टाइम्स
5. हबिबुल्लाह, ए. बी. एम. : द फाउन्डेसन ऑफ मुस्लिम रूल इन इंडिया
6. हार्डी, पी.: हिस्टोरियनस ऑफ मिडाइवल इंडिया
7. हेरास, एच.: साउथ इंडिया अंडर द विजय नगर इम्पाय टवसण् 1 एवं 2
8. हुसैन, महंदी : राइज एंड फॉल ऑफ मुहम्मद बिन तुगलक
9. एकराम, एम.एमः हिस्ट्री ऑफ मुस्लिम सिविलाइजेशन इन इंडिया एण्ड पाकिस्तान